Journal Literary Aesthetics
Volume No: 12, Issue No: 1, Year: 2025 (January-June)
PP: 49-56
ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

संस्कृत-साहित्य के अध्यापन और शोध-परंपरा में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का अवदान

अभिषेक कुमार झा

पूर्व शोधार्थी
विश्विद्यालय संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा

सारांश

भारतीय ज्ञान-परंपरा और आधुनिक अकादमिक जगत् के मध्य एक सुदृढ़ वैचारिक सेतु का निर्माण करने वाले मूर्धन्य विद्वानों में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का नाम अत्यंत आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। संस्कृत भाषा और साहित्य को केवल कर्मकांड, दर्शन या प्राचीन स्तुतियों की भाषा मान लेने की संकीर्ण मानसिकता को तोड़ते हुए, उन्होंने इसके अध्यापन और शोध-पद्धति में युगांतरकारी परिवर्तन किए हैं। प्रस्तुत शोध आलेख डॉ. त्रिपाठी द्वारा संस्कृत के पठन-पाठन, शोध-प्रविधि, और उच्च-स्तरीय अकादमिक विमर्शों में किए गए अभिनव प्रयोगों का समग्र मूल्यांकन करता है। इस अध्ययन में यह विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार उन्होंने प्राचीन गुरुकुल पद्धति की गहनता और आधुनिक विश्वविद्यालयीय शोध-प्रणाली की वैज्ञानिकता का अद्‌भुत समन्वय किया। इसके अतिरिक्त, नाट्यशास्त्र पर उनके विश्वकोशीय कार्य, नव-साहित्यशास्त्र की स्थापना, और केंद्रीय स्तर पर संस्थागत नेतृत्व के माध्यम से संस्कृत-शोध को जो वैश्विक और बहुआयामी स्वरूप प्राप्त हुआ है, उसकी विस्तृत विवेचना भी इस पत्र में की गई है।

मुख्य शब्द: डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञान-परंपरा, संस्कृत अध्यापन, शोध-प्रविधि, अकादमिक विमर्श, नव-साहित्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, विश्वकोशीय कार्य, संस्कृत-शोध, गुरुकुल पद्धति, विश्वविद्यालयीय शोध-प्रणाली, संस्थागत नेतृत्व

1. प्रस्तावना

किसी भी भाषा का साहित्य और उसकी ज्ञान-परंपरा तब तक जीवंत नहीं रह सकती, जब तक उसकी अध्यापन-शैली और शोध-परंपरा समय के साथ स्वयं को परिष्कृत न करती रहे [1]। तैत्तिरीयोपनिषद् में अध्ययन और अध्यापन की निरंतरता पर बल देते हुए महर्षि ने स्पष्ट उद्‌घोष किया है:

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः।" (तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1)

अर्थात् स्वाध्याय (अध्ययन-अध्यापन) में कभी प्रमाद या आलस्य नहीं करना चाहिए।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

संस्कृत साहित्य के इतिहास में बीसवीं सदी का उत्तरार्ध एक ऐसे वैचारिक संक्रमण काल के रूप में सामने आया, जब यह मांग उठने लगी कि प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन केवल कंठस्थीकरण (रटने) तक सीमित न रहे, बल्कि आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि से उसका पुनर्मूल्यांकन हो [2]। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का उदय हुआ। उनका जन्म 15 फरवरी 1949 को हुआ था और अपनी कुशाग्र मेधा के बल पर उन्होंने अत्यंत कम आयु में ही अकादमिक जगत् में अपना सर्वोच्च स्थान बना लिया।

सागर स्थित डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय से अपनी अकादमिक यात्रा प्रारंभ करते हुए, डॉ. त्रिपाठी ने अध्यापन को केवल एक आजीविका (वृत्ति) नहीं, अपितु एक पवित्र साधना माना [3]। उन्होंने यह अनुभव किया कि संस्कृत शोध को अब पाश्चात्य प्राच्यवादियों (ओरिएंटलिस्ट्स) के स्थापित पैमानों से बाहर निकलकर, भारतीय दृष्टि और आधुनिक वैज्ञानिक प्रविधियों के आलोक में अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करना होगा [4]। प्रस्तुत शोध पत्र उनके इसी भगीरथ प्रयास को केंद्र में रखता है। इसमें उनके द्वारा अध्यापन-प्रणाली में किए गए सुधारों, शोध-निर्देशन में अपनाए गए नवाचारों, पाठालोचन में उनके योगदान और एक प्रशासक के रूप में संपूर्ण राष्ट्र में संस्कृत-शोध के लिए अनुकूल परिवेश के निर्माण का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

2. संस्कृत अध्यापन-पद्धति में संरचनात्मक और वैचारिक सुधार

संस्कृत-शिक्षण के क्षेत्र में लंबे समय तक दो समानांतर धाराएं प्रवाहित हो रही थीं, एक पारंपरिक पाठशाला या गुरुकुल पद्धति, जो व्याकरण और कंठस्थीकरण पर बल देती थी, और दूसरी आधुनिक विश्वविद्यालयीय पद्धति, जो इतिहास और अनुवाद पर केंद्रित थी [5]। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का सबसे बड़ा अवदान इन दोनों पद्धतियों की विसंगतियों को दूर कर उनका श्रेष्ठतम समन्वय करना है।

अध्यापन की पूर्णता के संदर्भ में महाभारत का यह श्लोक उनके अध्यापन-दर्शन को पूर्णतः चरितार्थ करता है:

"आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।

पादं सतीर्थ्ययोगेन पादं कालक्रमेण च॥" (महाभारत, उद्योगपर्व)

अर्थात् एक विद्यार्थी अपने ज्ञान का एक चौथाई भाग गुरु से, एक चौथाई अपनी बुद्धि से, एक चौथाई सहपाठियों से और शेष एक चौथाई समय (अनुभव) के साथ सीखता है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

डॉ. त्रिपाठी ने अपने अध्यापन में इस सत्य को स्थापित किया कि विद्यार्थियों को केवल रटने वाला यंत्र नहीं बनाना है, बल्कि उनकी मौलिक मेधा को जागृत करना है। उन्होंने स्पष्ट किया कि केवल संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद पढ़ लेना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन ग्रंथों के रचना-काल की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन भी अनिवार्य है [6]। उदाहरण के लिए, जब वे कालिदास या बाणभट्ट के साहित्य का अध्यापन करते, तो वे केवल रस या अलंकार की मीमांसा तक सीमित नहीं रहते, बल्कि तत्कालीन समाज में कला, स्थापत्य और मानवीय संबंधों की गतिशीलता का भी तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत करते [7]। उनकी यह अंतर्विषयक अध्यापन-शैली विद्यार्थियों में एक स्वतंत्र और आलोचनात्मक विचार-क्षमता का विकास करती थी।

उन्होंने 'नया साहित्य नया साहित्यशास्त्र' जैसी कृतियों के माध्यम से कक्षा-कक्ष के अध्यापन में आधुनिक विमर्शों को सम्मिलित करने का जो अदम्य साहस दिखाया, उसने संस्कृत के विद्यार्थियों को समकालीन साहित्य-समीक्षा की मुख्यधारा से जोड़ दिया [8]। उनके अध्यापन की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि वे जटिल से जटिल शास्त्रीय सिद्धांतों को अत्यंत सरल और प्रवाहमयी भाषा में स्पष्ट करते हैं, जिससे संस्कृत से भयभीत होने वाले विद्यार्थी भी इस भाषा के प्रति आकर्षित हुए।

3. शोध-प्रविधि और पाठालोचन (पांडुलिपि विज्ञान) में नवाचार

शोध का मूल उद्देश्य केवल पुरानी बातों को दोहराना नहीं, बल्कि अज्ञात तथ्यों को प्रकाश में लाना और ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या करना है [9]। डॉ. त्रिपाठी ने संस्कृत-शोध की प्रविधि में जो वैज्ञानिकता और वस्तुनिष्ठता का समावेश किया है, वह स्तुत्य है। संस्कृत वाङ्मय का एक बहुत बड़ा हिस्सा आज भी पांडुलिपियों के रूप में धूल फांक रहा है।

पांडुलिपियों के संरक्षण और उनके वैज्ञानिक अध्ययन के विषय में प्राचीन विद्वानों का यह कथन प्रसिद्ध है:

"तैलाद् रक्षेत् जलाद् रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात्।

मूर्खहस्ते न दातव्यं एवं वदति पुस्तकम्॥"

अर्थात् पुस्तक (पांडुलिपि) कहती है कि मुझे तेल से, जल से और ढीले बंधनों से बचाना चाहिए, और कभी किसी मूर्ख के हाथ में नहीं सौंपना चाहिए।

डॉ. त्रिपाठी ने इसी भावना को चरितार्थ करते हुए 'पांडुलिपि विज्ञान' (मैनुस्क्रिप्टोलॉजी) और 'पाठालोचन' को आधुनिक संस्कृत शोध का एक अनिवार्य अंग बनाया [10]। उन्होंने स्वयं कई अज्ञात और विस्मृत पांडुलिपियों की खोज की और उनका अत्यंत प्रामाणिक संपादन कर उन्हें शोधार्थियों के लिए उपलब्ध कराया [11]।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

किसी भी प्राचीन ग्रंथ का संपादन करते समय उन्होंने विभिन्न मातृकाओं (पांडुलिपियों) का अत्यंत सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन कर उनके मूल पाठ के निर्धारण की जो कठोर वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई, वह आज के शोध-छात्रों के लिए एक मानक बन गई है। उन्होंने अपने शोध-छात्रों को यह कठोर अनुशासन सिखाया कि किसी भी संदर्भ को बिना उसकी मूल पांडुलिपि या प्राचीनतम मुद्रित संस्करण से मिलाए सत्य नहीं मानना चाहिए [12]। 'नटांकुशम्' और 'कामसूत्रम्' (जयमंगला टीका सहित) जैसे ग्रंथों का उनके द्वारा किया गया संपादन इस उच्च-स्तरीय शोध-प्रविधि का प्रत्यक्ष प्रमाण है, जहाँ प्रत्येक श्लोक और शब्द की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता को कठोर अकादमिक कसौटियों पर कसा गया है [13]।

4. साहित्यालोचन एवं नाट्यशास्त्र में अंतर्विषयक शोध-दृष्टि

डॉ. त्रिपाठी का शोध-कार्य केवल साहित्य की परिधि तक सीमित नहीं है, बल्कि वह दर्शन, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और कला-समीक्षा के विस्तृत फलक तक फैला हुआ है [14]। भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' पर उनके द्वारा किया गया शोध विश्व-स्तर पर संस्कृत विद्या की एक महती उपलब्धि माना जाता है। उन्होंने नाट्यशास्त्र को केवल एक प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथ मानने के बजाय, उसे आधुनिक रंगमंच, प्रदर्शन कलाओं और सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में पुनर्परिभाषित किया [15]।

भरतमुनि ने स्वयं नाट्यशास्त्र की इसी अंतर्विषयक और सर्वांगीण महत्ता को उद्घोषित करते हुए लिखा था:

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥" (नाट्यशास्त्र 1.116)

अर्थात् संसार में ऐसा कोई ज्ञान, कोई शिल्प, विद्या, कला, योग या कर्म नहीं है जो इस नाट्यशास्त्र में समाहित न हो।

चार खंडों में प्रकाशित उनका 'नाट्यशास्त्र विश्वकोश' संस्कृत-शोध की उस महान परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ एक ही विषय पर विश्वकोशीय और सर्वांगीण दृष्टि अपनाई जाती है [16]। उन्होंने शोधकर्ताओं को प्रेरित किया कि वे नाट्यशास्त्र का अध्ययन ग्रीक त्रासदी-सिद्धांतों, आधुनिक यूरोपीय रंगमंच और समकालीन भारतीय लोक-नाट्य परंपराओं के साथ तुलनात्मक रूप में करें।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने 'वाद' (शास्त्रार्थ) की प्राचीन भारतीय परंपरा पर जो शोध कार्य प्रस्तुत किया, उसने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय बौद्धिक विमर्शों में संवाद, तर्क और असहमति का कितना उच्च और वैज्ञानिक स्थान रहा है [17]। उनकी यह अंतर्विषयक शोध-दृष्टि नए शोधार्थियों को अर्थशास्त्र, राजनीति और पर्यावरण जैसे समकालीन विषयों पर संस्कृत साहित्य के परिप्रेक्ष्य से शोध करने के लिए एक अत्यंत सुदृढ़ वैचारिक धरातल प्रदान करती है।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

5. नव-लेखन का प्रोत्साहन और शोध-छात्रों का मार्गदर्शन

एक उत्कृष्ट शोधकर्ता होने के साथ-साथ डॉ. त्रिपाठी एक महान शोध-निर्देशक भी हैं। सागर विश्वविद्यालय में अपने लंबे कार्यकाल के दौरान उन्होंने दर्जनों शोध-छात्रों का मार्गदर्शन किया, जिन्होंने आगे चलकर संस्कृत-जगत् में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई [18]। एक श्रेष्ठ गुरु की पहचान यही है कि वह अपने शिष्यों की उन्नति को अपना सम्मान माने। नीतिशास्त्र में कहा गया है:

"सर्वत्र जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराजयम्।"

(सभी जगह अपनी विजय की इच्छा रखे, परंतु पुत्र (तथा शिष्य) से पराजय की कामना करे।)

डॉ. त्रिपाठी की शोध-निर्देशन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता उनकी वैचारिक उदारता है। वे अपने शोध-छात्रों पर अपने विचार थोपते नहीं हैं, बल्कि उन्हें मौलिक चिंतन करने और स्थापित मान्यताओं पर तर्कसंगत प्रश्न उठाने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं [19]।

उन्होंने संस्कृत में 'आधुनिक साहित्य' पर शोध को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। जहां एक ओर अधिकांश शोधार्थी केवल वेद, उपनिषद या कालिदास-भवभूति पर शोध करने में स्वयं को सुरक्षित मानते थे, वहीं डॉ. त्रिपाठी ने अपने छात्रों को बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के संस्कृत उपन्यासों, नाटकों और कविताओं पर शोध करने के लिए प्रेरित किया [20]। उनके इस अप्रतिम प्रयास से आधुनिक संस्कृत साहित्य का एक विस्तृत और प्रामाणिक दस्तावेज़ीकरण संभव हो सका। 'आधुनिक संस्कृत साहित्य: संदर्भ सूची' का उनका संकलन इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि वे भविष्य के शोधार्थियों के लिए कितने चिंतित और पूर्णतः समर्पित रहे हैं [21]।

6. संस्थागत नेतृत्व और राष्ट्रीय स्तर पर शोध-परिवेश का निर्माण

किसी भी भाषा में शोध के पल्लवन और उसके संरक्षण के लिए एक सुदृढ़ संस्थागत ढांचे की आवश्यकता होती है। नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (जो अब केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय है) के कुलपति के रूप में (2008-2013) डॉ. त्रिपाठी का कार्यकाल संस्कृत-शोध के इतिहास में 'स्वर्ण युग' माना जाता है [22]। उनके नेतृत्व में पूरे भारत में संस्कृत-अध्ययन के लिए एक अभूतपूर्व अकादमिक वातावरण का निर्माण हुआ। ऋग्वेद का यह संगठन-सूक्त उनके संस्थागत नेतृत्व की भावना को अभिव्यक्त करता है:

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।" (ऋग्वेद 10.191.3)

अर्थात्, हम सभी का विचार समान हो, हमारी समितियां समान हों, और हमारे मन तथा चित्त एक साथ मिलकर कार्य करें।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

उन्होंने शोध-प्रकाशनों को अत्यंत गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए अत्यंत कठोर और पारदर्शी पीयर-रिव्यू (समीक्षा) प्रणाली लागू की। उन्होंने अप्रकाशित उच्च-स्तरीय शोध-प्रबंधों को अनुदान देकर प्रकाशित करवाने की योजना को व्यापक रूप से लागू किया, जिससे युवा शोधार्थियों को भारी प्रोत्साहन मिला [23]।

डॉ. त्रिपाठी ने देश के विभिन्न परिसरों में आधुनिक पुस्तकालयों, ई-संसाधनों और पांडुलिपि-संरक्षण केंद्रों की स्थापना की। उन्होंने राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर की कई अकादमिक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों और विश्व संस्कृत सम्मेलनों का सफल आयोजन किया, जहाँ युवा शोधार्थियों को विश्व के मूर्धन्य विद्वानों के साथ सीधा संवाद करने का अवसर प्राप्त हुआ [24]। एक कुशल प्रशासक के रूप में उनकी दूरदर्शिता ने संस्कृत-शोध को केवल बंद पुस्तकालयों से निकालकर वैश्विक संगोष्ठियों के जीवंत विमर्शों में पुनर्स्थापित कर दिया।

7. निष्कर्ष

निष्कर्षतः, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का संस्कृत-साहित्य के अध्यापन और शोध-परंपरा में अवदान मात्र कुछ ग्रंथों की रचना या संपादन तक सीमित नहीं है। उनका सबसे बड़ा योगदान एक ऐसी नवीन अकादमिक चेतना का निर्माण है, जो परंपरा का सम्मान तो करती है, परंतु उसके भारी बोझ तले दबती नहीं है। उपनिषद का परम वाक्य है:

"सा विद्या या विमुक्तये।"

(विद्या वही है जो हमें मुक्त करे - अज्ञान से, जड़ता से और संकीर्णताओं से।)

डॉ. त्रिपाठी की शोध और अध्यापन पद्धति ने संस्कृत-अध्ययन को इसी जड़ता से मुक्त किया है। उन्होंने अपनी अध्यापन-शैली से विद्यार्थियों में विषय के प्रति गहरा अनुराग उत्पन्न किया और अपनी प्रखर शोध-दृष्टि से संस्कृत-समीक्षा को एक नई वैज्ञानिकता और वैश्विक स्वीकार्यता प्रदान की।

पांडुलिपियों के धूल-धूसरित पृष्ठों से लेकर आधुनिक रंगमंच की चकाचौंध तक, और प्राचीन काव्यशास्त्र से लेकर समकालीन स्त्री-विमर्श और नव-यथार्थवाद तक, डॉ. त्रिपाठी की लेखनी और शोध-प्रज्ञा ने हर दिशा में नए प्रतिमान स्थापित किए हैं। एक अत्यंत कुशल अध्यापक, एक सजग शोध-निर्देशक और एक दूरदर्शी अकादमिक प्रशासक के रूप में उनके द्वारा किए गए संस्थागत और वैचारिक सुधारों के लिए संस्कृत-जगत् सदैव उनका ऋणी रहेगा। उनकी यह प्रज्ज्वलित की गई शोध-परंपरा आने वाले कई दशकों तक संस्कृत वाङ्मय के अध्येताओं का मार्ग निरंतर प्रशस्त करती रहेगी।

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

संदर्भ

1. प. शर्मा, संस्कृत शिक्षण प्रविधि एवं नवीन आयाम. जयपुर: राजस्थान ग्रंथागार, 2015, पृष्ठ 45-50.
2. नाथ, "आधुनिक संस्कृत शोध: दिशा और दशा," संस्कृत विमर्श, खंड 12, अंक 2, पृष्ठ 112-118, 2018.
3. रा. व. त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2007, पृष्ठ 210-215.
4. कुमार, "संस्कृत शोध की आधुनिक प्रवृत्तियां और आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी," शोध-प्रभा, खंड 5, अंक 1, पृष्ठ 12-19, 2021.
5. भ. मिश्र, संस्कृत शिक्षा: कल, आज और कल. नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2010, पृष्ठ 88-92.
6. स. चतुर्वेदी, "संस्कृत अध्यापन में ऐतिहासिक यथार्थवाद," प्राच्य विद्या अनुसंधान, खंड 8, अंक 3, पृष्ठ 55-61, 2019.
7. रा. व. त्रिपाठी, संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य परंपरा. दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 130-135.
8. रा. व. त्रिपाठी, नया साहित्य नया साहित्यशास्त्र. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 15-22.
9. म. झा, अनुसंधान प्रविधि. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 2016, पृष्ठ 34-40.
10. व. पांडेय, पांडुलिपि विज्ञान और संस्कृत शोध. प्रयागराज: अक्षयवट प्रकाशन, 2020, पृष्ठ 102-108.
11. द. भार्गव, "आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी का पाठालोचन में अवदान," पांडुलिपि पत्रिका, खंड 3, अंक 4, पृष्ठ 77-85, 2022.
12. रा. व. त्रिपाठी, नटांकुशम् (अज्ञातकर्तृकम्). नई दिल्ली: डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, 2023, प्रस्तावना पृष्ठ 5-10.
13. रा. व. त्रिपाठी, कामसूत्रम् (जयमंगला टीका सहित). नई दिल्ली: न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, 2019, पृष्ठ 45-50.
14. सु. द्विवेदी, "संस्कृत शोध में अंतर्विषयक विमर्श," साहित्य भारती, खंड 14, अंक 2, पृष्ठ 20-28, 2021.
15. रा. व. त्रिपाठी, नाट्यशास्त्र विश्वकोश, खंड 1. नई दिल्ली: न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, 1999, पृष्ठ 11-18.

© Copyright @ Authors

ISSN: 2347-8705
Peer Reviewed & Refereed Journal (IF: 5.8)
Journal Website www.literaryjournal.org

16. प्र. शुक्ल, "आधुनिक रंगमंच और नाट्यशास्त्र: डॉ. त्रिपाठी की दृष्टि," नाट्य विमर्श, खंड 6, अंक 1, पृष्ठ 40-46, 2017.
17. रा. व. त्रिपाठी, वाद की परंपरा. नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2021, पृष्ठ 85-92.
18. श. तिवारी, संस्कृत शोध के नए क्षितिज. भोपाल: मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी, 2018, पृष्ठ 150-155.
19. सिंह, "डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी: एक युगप्रवर्तक शोध-निर्देशक," विश्व संस्कृतम्, खंड 22, अंक 3, पृष्ठ 10-15, 2023.
20. न. उपाध्याय, आधुनिक संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक मूल्यांकन. वाराणसी: संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, 2014, पृष्ठ 211-218.
21. रा. व. त्रिपाठी, आधुनिक संस्कृत साहित्य: संदर्भ सूची. नई दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2011, प्रस्तावना पृष्ठ 1-5.
22. य. शास्त्री, "राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के विकास में डॉ. त्रिपाठी का नेतृत्व," संस्थान बुलेटिन, खंड 10, अंक 4, पृष्ठ 5-12, 2013.
23. ल. शर्मा, भारत में संस्कृत शोध का संस्थागत इतिहास. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, 2019, पृष्ठ 305-312.
24. र. मिश्र, "विश्व संस्कृत सम्मेलनों की प्रासंगिकता," वैश्विक संस्कृत विमर्श, खंड 2, अंक 1, पृष्ठ 44-50, 2015.

© Copyright @ Authors